पता नहीं यह सिलसिले की शुरुआत है या खातमा

प्रभात पाण्डेय

प्रतिध्वनि
कलकत्ता

महाप्राण निराला की जन्मशती के अवसर पर
महाकवि को प्रतिध्वनि के प्रणति निवेदन के रूप में
प्रकाशित ग्यारह रचनाकारों की प्रथम पुस्तकों में एक।

© प्रभात पाण्डेय

पता नहीं यह सिलसिले की शुरुआत है
या ख़ातमा प्रभात पाण्डेय

प्रतिध्वनि ३९ [illegible] कलकत्ता ७००००७ द्वारा प्रकाशित।
सुराना प्रिंटिंग वर्क्स २०५ रवीन्द्र सरणी कलकत्ता ७००००७ द्वारा मुद्रित।
लेज़र टाइप सेटिंग सुराना कंप्यूटोग्राफी कम्पोजिंग संत कुमार कामत।
आवरण परिकल्पना राजेन्द्र कानूनगो कंप्यूटर डिज़ाइन अमित सुराना।
प्रथम संस्करण वसंत पंचमी १२वीं फरवरी १९९७।
मूल्य पचास रुपये। विदेश में US $ 4/

PATA NAHIN YEH SILSILE KI SHURUAAT HAI YA KHATMA
a collection of poems by PRABHAT PANDEY

समर्पित

प्रेरणा के स्रोता को

जिन्हाने

शब्दा को

एहसास की अभिव्यक्ति दी

— प्रभात पाण्डेय

अनुक्रम

पता नही
यह सिलसिले की
शुरूआत है
या
ख़ातमा

हर साल टँग जाता है कैलेन्डर

हर साल
टँग जाता है कैलेन्डर
नई-नई तस्वीरो के साथ
और फडफडाने लगती है तारीख
एक-एक कर ।

बूँद-बूँद
खाली हो जाती है
ब्लड बैक की
औंधी लटकायी बोतल ।

आशाएँ
कतरा कतरा
हो जाती है
'एड्स का शिकार ।

एक खौफनाक रूप
ले लेती है
मोमबत्ती
पिघल कर ।

उसके इर्द-गिर्द
पाई जाती है
परवानो की लाशे
जिनके
सामूहिक दाह-सस्कार की खातिर
कफन बनकर
उतर आता है
कैलेन्डर ।

कुछ भी तो नही बदला है
कैलेन्डर बदलने के सिवा । ❖

छेडते ही

छेड़ते ही
पसरने लगता है बिन्दु
जैसे शोला चिनगारी या कैंसर ।

पल-पल
पनपने लगती है
अनगिनत रेखाएँ -
परिधियाँ सरहद सीमाएँ ।
पेड़-पौधे
नदी-सागर
धरती-आकाश
सब के सब
हो जाते है सीमाबद्ध ।

तू भी तो
हो जाता है
मज़हबा म
प्रतिबन्धित ।

तब
रिश्ते नही रह जाते
रह जाती है
रिश्ता की
कराहती आवाज़ ।

बड़ा ही खौफ़नाक होता है
बँटवारा
जब भी जहाँ भी होता है ।

सुबह ही तो देखकर गया था

सुबह ही तो
देखकर गया था -
अच्छा खासा था पेड
हरा-भरा
फूला से लदा
गदराया फला से
खेलता
पत्ता-पत्ता ।

कितनी तेज थी
हवा की रफ्तार
जो
उखड़ गया वह
जड समेत ।
कितनी तेज थी
उसकी धार
जो
बिखर गया वह
कतरा-कतरा ।

कहाँ चले गए
घासला के बाशिन्दे ?
उन्हे तो
सूरज को साक्षी मान
कल सुबह
नापना था
आकाश । •

मै न झरना, न दरिया, न समन्दर

मै
न झरना
न दरिया
न समन्दर
फिर क्या
लहरे ही लहर अदर ?

मै
न दीया
न तेल
न बाती
फिर क्यो
अँधेरा हो जीवन-साथी ?

मै
न शमा
न मोम
न परवाना
फिर क्यो
बना यह अफ़साना ?

मै
न पादरी
न मुल्ला
न पडित
फिर क्या
पूजाघर मेरा खडित ? ✥

उनको रोको इधर आने से

उनको रोको
इधर आने से ।

बर्फ के पिघल जाने से
पानी की सतह पर
फिसल रहे है
ग्लेशियर
टुकड़ा-टुकडा हो चट्टान
रही है बिखर ।

शहर
उगलता है
धुँआँ
हर घर
है जलता हुआ ।

यहाँ वहाँ
क्या कहे
कहाँ-कहाँ
कन्फ्यूज़न है । •

तुम्हारे उगने से अब कुछ फर्क नही पडता

तुम्हारे उगने से
अब कुछ फर्क नही पड़ता
और
न
तुम्हारे डूब जाने से ।
हकीकतन
तुम्हारा होना या न होना
कुछ मतलब ही नही रखता ।

वह
जो उड़ भागी सुबह-सुबह
और
चुन लाई
चद दाने चद तिनके
घासले से झाँकते इन्तज़ार की खातिर
उसने तो
तुम्हारी ओर
ताका भी नही ।
वक्त ने तो
उसे इतना भी वक्त नही बख्शा
कि सहला पाती वह
थकान से लथपथ
परा को ।

वे गुर्रा-गुर्रा कर
ओ रहे झपट्टा
मारते गिर्द बिखरे पडे
इर्द-गि के चद टुकड़ा पर
रोटी म भी
गुजार
उन्हों ी तरफ़ नही देखा ।
तुम्हा तो
मैं भी ा रह गया
खोज उम्र
तमाम को ही
स्वय म ।
रफ़्तार के
सुस्ता म्हे जो मिले
चन्द
वे भी रगद तले
ढूँढ के थे न दाने ।
वहाँ
न

था

से
इन्तज़ार ।

तार ।
उगने से
फर्क नही पड़ता

व जाने से ।

पाँव तो रखकर देखो

पाँव तो रख कर देखो ।
सड़कों पर
दहक रहे है
शोले
तमाम वातावरण में
उड़ रही है
बारूद ।

चूल्हे से
चिटकती तो है
चिनगारियाँ
पर
समा जाती है
खाली बर्तनो म
फूस के आश्वासना पर ।

ऐसे माहौल को बदलने के लिए
ज़रूरी हो गया है
कि हवा का रुख बदले
जिससे
किसी भी कल
कुहासे से घिरा सूरज
न निकले । ◆

पानी के सरकते ही मर नहीं जाती है मछलियाँ

पानी के सरकते ही
मर नही जाती है
मछलियाँ ।

छटपटाती है बेहद
बालुई किनारो पर ।

अदाज़ा है कभी
विदा के क्षण हिलते हाथो का
पल-पल बढता भार
या
गर्माहट आँसुओ की
छलक पडते है जो
चौराहे पर
जब
राह कहती है
एक-दूसरे को
अलविदा । •

दीवार पर

दीवार पर
बरक़रार है सफ़ेदी
अब भी ।
नई-नई
बनी है शायद ।
वरना
रँगी नही है
शहर के माहौल मे
अब तक । ❖

अक्सर मेरी तमाम राहे समा जाती है

अक्सर
मेरी तमाम राह
समा जाती है
तुम्हारी गली मे,
निगाहे
अटक जाती है
खुली खिड़कियो से।

लबो के पहरे से
दहशतज़दा शब्द
रह जाते है
ज़ुबाँ पर ही
मँडराते ।

कितनी देर
खोजते रहेगे हम
चौराहे पर
रिश्तो की परिभाषा । ❖

महज़ एक इत्तिफाक

महज़ एक इत्तिफ़ाक
कि जहाँ
मै खडा था
तुम्हारी राह
वहाँ
आ मिली ।

रुकना तो चाहा था
तुमने भी
पर
तुम्हारी राहो ने
ऐसा होने न दिया ।

मेने तो
कभी सोचा ही नही कि
चट्टान बन
पलट दूँ
दरिया का रुख
तूफान बन
उडा दूँ
तमाम जगल का पत्ता-पत्ता ।

वैसे तो
मै
वटवृक्ष भी नही हो पाया
जिस पर
रचे जा सकें घासले
पल-दो-पल
फुर्सत की साँस ली जा सके
जिसके तले ।

मुसाफ़िरख़ाने की
ख़ामोश दीवारे है
दहशत भरी,
उनके सन्नाटे मे
गूँजती है
तुम्हारी हँसी
मँडराती है
तुम्हारी यादे
छटपटाती है
बसियाते गुलदस्ते की महक ।

एक बार
अचानक
प्रेरित हुआ था
झरनो से
चाहा था
सरिता सा
निरतर बहना
पर सागर के खारेपन ने
आगे बढने न दिया ।

ऐसा भी समर्पण क्या
कि प्यास ही न बुझे ।

महज एक इत्तिफ़ाक कि
जहाँ मै खडा था
वही
अब
चौराहा बन
चुपचाप निहारता हूँ
उन राहो को
जो आ मिली थी
और जहाँ
रुकना तो चाहा था
तुमने भी ।

एक्वेरियम के शीशे से

एक्वेरियम के
शीशे से
बार-बार आकर
टकराती है
मछलियाँ
और
हम
चुपचाप निहारते है
उनकी
बेवसी ।

माँ मेरी ।

माँ मेरी ।
ला मुझे दे दे
वही आँचल तेरा
छिपाकर खुद को
मै
जिसमे
जाता था दुबक
बात हौवा की
सुना करता था जब ।

माँ मेरी ।
तब नही देखा था हौवा
तब नही था जानता
क्या चीज़ है वह ?
बस
उसके नाम से ही
काँप जाता था
बचपन के दिनो ।

माँ मेरी ।
हृदय की धड़कन
बढी है आज
तीव्र-गति से चल रही है
धौकनी सी साँस ।
लाख समझाता हूँ खुद को
पर वही अहसास
वही हौवा-वहाँ बाहर
वही हौवा-यहाँ अदर
वही नीचे वही ऊपर
मचा है शोर
चारा ओर
उस हौवे का केवल ।

माँ मेरी ।
आज फिर
मै
बहुत भयभीत आतकित
जग की रीत से
ऊब चुका है
मन
यहाँ की प्रीत से ।

माँ मेरी ।
ला मुझे दे दे
वही आँचल तेरा
छिपा लूँ खुद को मै जिसमे
अपनी
हिचकिया को रोक
मीचे आँख अपनी
सो सकूँ मै
सहारे थपकिया के
जो दिया करती थी
अक्सर तू
बचपन के दिनो । •

दरवाज़े पर टँगी नाम-पट्टिका

दरवाज़े पर टँगी
नाम-पट्टिका
कल परिचय देगी
तो
किसका ?

दीवारा मे प्रतिबधित
ये माल-असबाब
किससे हागे सम्बन्धित ?

छितराई किताबो के
उडते-बिखरते पन्ने
सदा की तरह ही रहेगे
मौन
उनके मूक सदेश
समझेगा कौन ?

पेपरवेट से दबे
सम्बोधित पत्रा के भाव
तडफडाते रहगे
प्रत्युत्तर के अभाव मे ।
कविता की
अध-लिखी पक्तियाँ
बेकदर
होती रहेगी तितर-बितर ।

गहन सन्नाटे मे
समा जाएगा
चूडियाँ का
खनखनाता स्वर -
टुकडा-टुकडा हो जाएगा
उनका अस्तित्व ।

बस
चद
सवेदनापूर्ण सहानुभूति के सदेश
फिर कुछ भी नही रहेगा शेष ।

और
लौटाने लगेगा डाकिया
पत्रा पर
लिख-लिख कर
"नॉट नोन ।"

तुम गुलाब की बाते करो

तुम गुलाब की बाते करो
मै बटोरूँ
काँटा से बिंधी
पखुडियाँ ।

तुम रातरानी की
कहानी लिखो
मैं निहारूँ
मुरझाया सूरजमुखी ।

तुम
भँवरा की प्रणय-कथा सुनो
मै समझूँ
कलियो की
विरह व्यथा ।

एक ही बाग मे
तुम चलो
हवा के मदहोश झोकों सा
और
मैं उडूँ
दर-ब-दर पतझड़े पात सा । •

शब्द, सम्बोधन, समर्पण या स्पर्श

शब्द
सम्बोधन
समर्पण
या स्पर्श ।
या फिर
दूर और पास का
एहसास मात्र -
क्या है रिश्ते ।

खिलते गुलाब
मुस्काती कलियाँ
डायरी के पन्नो के बीच
सँजोयी पँखुडियाँ
या गुड्डे और गुड़िया
और सप्तपदी - अग्नि के फेरा के साक्ष्य ।
या फिर उससे भी परे
दुर्गम राहो पर
हमसफर ।
क्या है रिश्ते ।

झरते झरने बहती नदी
या झील की गहराई ।
कजरारी पलको म
सपने और तनहाई ।
चिलमना की ओट म
पसरता इन्तज़ार ।
या फिर सागर के पार
धरती और आकाश,
फैला बाहुपाश ।
क्या है रिश्ते ।

सजा तो था पलाश

सजा तो था पलाश
पर राहो को
कब मिली फुर्सत
कि निहार सकें उसे ।

सोचता तो होगा ही फूल
अपने जीवन की सार्थकता ।

एक प्रश्न
कि चुपचाप खिला रहे वह
और एक दिन हठात्
हवा की बेरुखी
उड़ा ले जाए पखुड़ियाँ
या फिर अँगुलिया का स्पर्श
और हाथो की लकीर
बन जाएँ
उसका बसेरा ।

डायरी के पन्नो के बीच
सिमट जाए
उसका तमाम जीवन
बन कर रह जाए वह
बस यादगार
नही यह नही चाहा उसने ।

किताबे जो घिरी रहती है
बुक-शेल्फ़ की दीवारा से
पल-पल
जमती है उन पर गर्द
और गूँगे हो जाते है
उनके शब्द । ❖

शहर और शहर की सडकें

शहर
और शहर की सड़कें ।
गाँव
और गाँव की पगडडियाँ ।

ढेर सारे चरित्र
ढेर सारे मुखौटे
अभिनय ही अभिनय
रगमच ही रगमच ।

बार्बी ।
सजा तो दूँ
तुझे हर रूप म
पहना तो दूँ
तुझे हर वेश-भूषा
पर जिनसे अभिव्यक्त न हो
तेरे अपने भाव
कहाँ से लाऊँ
वे शब्द ।

बार्बी ।
कैसे पहनाऊँ
तुझे
मुखौटा ।

झंडा फहराने की कितनी ही तैयारियाँ

झडा फहराने की
कितनी ही तैयारियाँ
जुलूस के नारों के साथ
गूँजकर
समा गईं
आश्वासनों के
बालुई घरौंदों में ।

हर नई लहर
किनारों पर
छोड़ तो गई
पदचिन्ह ,
फिर भी
पनपते कैक्टसों ने
गर्भवती सीपियो को
मोती
जनमने न दिया ।

ऐसा भी क्या कि
बाग

तमाम उम्र
पतझड झेले
और
हवाओ के रेले
कुरेदते रह
पत्तो का ज़ख्म -
नग्न शाखे
बनी रह मूक दर्शक
कुछ भी न बोले ।

राख के ढेर मे
दुबकी चिनगारियो !
वक्त
कभी भी
जाता नही
निकल जाता है
तब
नदिया पर
बँध जाते है
बाँध
जाल मे
फडफडाते है पख
एक्वेरियम म
हाँफती है
मछलियाँ
कुल्हाडियो की धार से
काटकर
टहनियाँ
झाक दी जाती है
आग मे ।

राख के ढेर म
ऊँघती चिनगारियो !
करवटे बदल लेने से
स्वप्न नही हो पाते
हकीक़त ।

सिलसिलेवार नारे
और
जुलूस
सकेत है
उडेगी गर्द
फैलेगा गुबार
दिन चढे ही
छा जाएगा
कुहरा
और
चिलमना के पार
सब कुछ झुलस कर रख देगी
हवा की बेरुखी ।

इसके पहले कि
खो दे सीपियॉ
गर्भ-धारण की क्षमता
उदास शाखे
हो जाएँ
हताश
निराश फड़फडाते पखा को
नभ लगे दुर्लभ -
राख के ढेर म
सुगबुगाती चिनगारियो ।
चलो
एक साथ निकलो ।
वरना
एक-एक कर
जलती जाएँगी
काठियाँ
और
सिलसिला
दियासलाई के डब्बो के
खाली होते रहने का
खत्म न होगा कभी ।

आकाश । क्या यह ज़रूरी है

आकाश ।
क्या यह ज़रूरी है
तू नीला रहे
या फिर
घनघोर काला ।

तुझे हरा रँग देना
या पत्तो का बना देना लाल
प्रगति है
या क्रान्ति
या कल्पना की आड मे
बगावत ?

तूलिका के रग का भवितव्य है
मनमौजी बिखराव
फिर उस पर पाबदी क्या ?

आकाश ।
क्या
यहाँ जो कुछ है
चर्चा का विषय है ?

आकाश ।
क्या गूँगा हो जाना
अभिशाप नही उपलब्धि है ।

दीवारें नहीं होती तो

दीवारें नही होती
तो न होती खिडकियाँ
न होते दरवाजे ।

छत नापती
आकाश ।

लापता किनारे
पसरी नदियाँ
मिट जाना अस्तित्व
सागर का ।

सब के सब
उड़ते
परा के सहारे
विहगा से
फूल-फूल बाग-बाग
मँडराते ।
तैरते
मछलिया सा ।

तब
न एक्वेरियम होता
न पारदर्शी पाबदी
झलकती
चेहरो की हकीक़त
मुखौटे नही होते तब । ❖

मछलियाँ तैरने के बजाय

मछलियाँ
तैरने के बजाय
आकाश मे
विचर पाती
तो क्या बडी मछली
छोटी को
पकड पाती ?

मछलियाँ
अन्दर के बजाय
काँटे
बाहर उगाती
तो क्या बड़ी मछली
छोटी को
खा पाती ?

कई बार मैंने की है कोशिश

कई बार
मैने की है कोशिश
तस्वीर बनाने की
रग भरी तूलिका को पकड कर
किया है प्रयास
चित्राकन का ।

पर हर बार
बेदाग कैनवास पर
उभर आती है
ऊटपटाँग रेखाएँ
उभर आते है
भयावह पजा के निशान
गडे नज़र आते है
दैत्याकार नाखून
लहूलुहान
नज़र आने लगता है
कैनवास ।

मै घबडाकर
दूसरा कैनवास उठाकर
दोहराता हूँ प्रयास
चित्राकन का । •

कटता, बँटता, हाथो से सरकता

कटता वँटता
हाथा से सरकता
एक्का दुक्का सत्ता
ताश का हर पत्ता ।
गिरता
बादशाह बेगम पर
गुलाम ।

हर प्रहर
घोडा
चल रहा
ढाई घर ।
सुबह शाम रात
शतरजी सिपाही की
राजा को
मात ।

उधर
चौपड पर
कौड़ियाँ
उतान-चित ।

क्या
इससे भी घमासान था
महाभारत का युद्ध ? ❖

एक कोने मे बोनसाई बरगद

एक कोने मे
बोनसाई बरगद
दूसरे म
शीशे के पार
मछलियो की कतार
तीसरे म
फूलदान का बाहुपाश
और
चौथा कोना
कुछ भी
इन्ही की तरह
या फिर
हमारी तरह
प्रतिबधित ''शो-पीस ।

सडकें दौडती हे शहर मे

सडकें
दौडती है
शहर मे ।

एक्वेरियम म
बेतहाशा
तैरती है
मछलियाँ ।

खिडकिया के पीछे
घुटता है
दम ।

काश ।
हिलते पर्दे
पख बन जाते ।

नदी है तो बहाव भी होगा

नदी है
तो बहाव भी होगा
उठती-गिरती लहरा की तरह
कभी-कभार
ऊबड-खाबड ।

नदी है
तो किनारे भी हागे
आपसी फ़ासले की सीमाबद्धता म
तल्लीन ।

किनारा पर ही हागे
कुछ नये कुछ पुराने
अड़े-खडे
दरख्त
परखते हर वहाव को
नापते
किनारा के फासले ।

नदी है
तो कटाव भी होगा
खट्टा-मीठा
सतह पर
या भीतर ही भीतर ।

नदी है
तो यह सब
वरना
नदी
नदी ही नही ।

नदी है
तो लहर है
बहाव है
और
कटाव भी ।

नदी है
तो है स्मृति-चिन्ह
बालू पर
पद-छाप
और पानी मे
कटे-छटे
नदी के द्वीप । •

बद कर दिया है मेंने

बद कर दिया है
मैने
कपड़े सिलवाना
दर्ज़ियो के हाथ ।

नप जाया करती थी
मेरी हर क्षमता
उनके यहाँ ।

मेरे पैरो की ऊँचाई
मेरी बाँहो की पहुँच
मेरे सीने की उदारता
मेरे कधा की
भार-वहन क्षमता
सब के सब
सिमट जाते थे
उनकी ऑर्डर-बुक म
मात्र
आँकड़े बन कर । ❖

आँगन मे चुपके से उतर आई

आँगन म
चुपके से
उतर आई
सुबह की धूप
और फिर
उड गई
फुर्र से
नन्ह-नन्ह परा के सहारे ।

इसके पहले कि
दरवाजे खुलते
और
उसे देते आवाज़
लौट आने को
बहुत दूर
निकल चुकी थी वह ।

हथेली पर
गुड की भेली
लोटे का शरबत
परात का जल
खटिया चादर तकिया
सब के सब
ज्यो का त्या ।

बिखरे पडे फूला को
निहारता ही रह गया
गुलमोहर ।

काली-काली स्लेटो पर

काली-काली स्लेटा पर
सफेद चॉक
कितनी ही लकीर
कितनी ही आशाएँ
कितने ही सपने ।

लगे पसरने
तारे ही तारे
सारे आकाश म
जुगनुआ का मेला ।
शहर म
जुलूस
हर शामिल शख्स
फिर भी
अकेला ।
तनहाई पास
भीड म रहकर भी
तनहा हर साँस ।
कितनी ही
अनुभूतियाँ ।

सादे-कोरे पन्ना पर
काली-काली स्याही
और
कितनी ही लकीर
कितनी ही आकृतियाँ ।

सॉरी, मै सभ्य नही हूँ

सॉरी ।
मै सभ्य नही हूँ
सभ्य होने की कोशिश कर रहा हूँ ।

विशेष ज्ञानोपार्जन हेतु
पढ रहा हूँ किताब
समा रहा हूँ चर्चालीन सेमिनारो मे
चढ रहा हूँ
गगनचुम्बी मीनार
और कई बार
घोड़े पर होकर सवार
भागता हूँ
भागती सभ्यता के पीछे ।

ऐसी नही
कि यह सब कर रहा हूँ
एक रोबोट सा
आँख मीचे ।

सरहदी हद तक
मैने देखा है
सभ्य समाजवाद
जो गाँव से
शहर के कोने-कोने तक
धूस-धूसर फुटपाथा से
मखमली बिछौने तक
जनता के राशन से
नेता के भाषण तक
बिखर रहा है हर जगह
कुहासे म भ्रमित
पीलिया-ग्रसित सूर्य-किरणा सा ।

उड़ रहा है गुबार सा
खलिहाना से
गोदामा तक
पसर रहा है चीटियो की कतारो सा
मकाना से
श्मशाना तक
गूँज रहा है
जैसे सरकारी अस्पतालो के
जनरल वार्ड मे
मरीज़ की चीख
और फटेहाल भिखारी के
औधे फैले हाथा की तरह
अल्लाह के नाम पर
माँग रहा है सभ्य लोगा से
भीख ।

मैने देखी है
बैलगाडी की लीक

सरल निष्कपट पगडंडियाँ
जो विस्तृत निर्भय मैदानो से गुज़रती
सड़को से जा मिलती ।
वे अनायास उन्हे न्यौत आती
और जन्मजाती काली चिपचिपाती सड़कें
देहातो मे
निर्लज्ज मेहमान की तरह
जाती है पसर
प्रगतिवादिता के नाम पर ।

गाड़ लेती है वे
बिजली के खम्भे
जिनपर लटक जाता है प्रगतिवाद
विद्युतविहीन बल्बो सा ।

मैने देखी है
सभ्य उदारवादिता
जो जर्जरी अस्थियो से सटे
बेजबान लटके
अँगूठो का निशान बन
लगती है श्वेत दस्तावेजो पर
जिन्हे रखकर बौने मेजो पर
लिखी जाती है
वधक-बँधुआ समाज की
उदार अतहीन अन्तर्कथा ।

मैने देखी है
सभ्य कुलीन भव्यता
जो पर्वताकार उदरो की धोती पर
मलमली अँगरखो मे
लटकती थी कल तक ।
पर आज
बडे नाज से
सफ़ारी सूटो मे सँवरी
अँग्रेज़ी बूटो मे पसरी कुचल रही है
मजदूर चीटियो की कतार ।
और उधर

लगातार
रानी चीटी से
निभा रही है
वार्तालापी शिष्टाचार।

मैने देखी है
सभ्य सफेदपोश राजनीति
जो झरझरी नग्न दीवारा पर लिखे
खोखले नारा के सहारे निकालती है
तथाकथित जनचेतना का जुलूस
तोडती है निरीह झाडफानूस
बैठाती है आयोगा पर आयोग
और
वस्त्रहीन जनता से
करके बलात्कार
अँधेरी मतपेटियाँ से निकल
शतरजी घोडा की चाल चल
शून्याकार गुम्बदा के नीचे
बनाती है - गिराती है
बारबार
सुविधावादी सरकार।

मैने देखी है
कराहती धर्मनिरपेक्षता
जो पुरस्कृत चैरिटी मिशनरिया के
तिरस्कृत गर्भदाना के गले म
लटकती है तावीज़ बन
घुसती है लेकर कृपाण
धर्म-रक्षका का अगरक्षक बन
करती है नर-सहार
मकबरा पर
और
उनके शिलालेखा पर
गढ आती है
मर्यादित नाम
लाल हर्फ़ा म।

मैने देखी है
सभ्य सामाजिक औपचारिकता
जो हर शाम
रँगारँगी पार्टिया के नाम
अँग्रेज़ी धुना पर थिरकती
हलाहली बोतला से निकल
मचाती है अश्लील चहल-पहल
और
सजे-सँवरे केशा म
अँगुलिया के सहारे
सरकते-सरकते
पसर जाती है सोफे और फर्श पर
नग्न-वक्षस्थला की
वँधनिया म
लिपट ।

मैने देखा है
खुद को
जो सभ्य होने की आकाक्षा लिए
गॉव-गाँव शहर-शहर भागता
पसीना वन
पिघलता
रेत पर खडा होकर
उठती-गिरती लहरा के साथ
गिन रहा हूँ
अपने परिधाना की
खरोच और सिलवट ।

सह रहा हूँ
हर आने-जाने वाले का
व्यग
सुन रहा हूँ उनके शब्द
फिर भी
अपने आप को
उपलब्ध चिथडा म लपेटे
नग्न समाज म जी रहा हूँ
नि शब्द ।

जितनी बार तुम्हारे क़रीब से गुज़रता हूँ

जितनी बार
तुम्हारे करीब से गुज़रता हूँ
सोचता हूँ
तुम कुछ कहती क्या नही ?

चुप रहना तो
तुम्हारा स्वभाव नही
न ही तुम्हारा धर्म ?

बचपन मे
जब किताबो म
तुम्हारे बारे मे पढा था
सब कहते है
ठीक तुम्हारे बचपन सा ही

हो चला था
पहाडा को तोड़कर
चट्टाना को बहाता
उछलता कूदता
लहरा कर पसर जाता
मैदाना म ।

मै तुम्हारा पर्याय
और तुम
मेरी प्रेरणा की स्रोत
झरना की उमग से
सागर की गहराई तक ।

कॉसाई ।
किस गहन चितन म
डूबी हो इन दिना ?
धँसती ही जा रही हो
बालुई-कणा के हुजूम म
दिन-पर-दिन ।

जानती हो
बचपन के दिना
ये ही हजारा की तादाद म
मेरे पैरा पर पडकर
बनते थे मेरे ख्वाबा के घरौद
पर मुझे
बार-बार प्रलोभित कर
समेट लेते थे
मेरा उमग-उत्साह
मेरी उछल-कूद ।

परत-दर-परत
समाता गया हूँ इनमे ।
कुछ भी तो नही है
इनके पास
चन्द काँटेदार झाड़ियाँ
और कैक्टस उगाने के सिवा ।

नही कॉसाई नही
तुम्हारा जन्म
कतई इसलिए हुआ नही
कि समेट कर रखो
अपना व्यक्तित्व
सैलाबा से घिरे पोखरा सा
और चुपचाप सहो
जो कुछ भी
हो गुजर रहा है तुम पर ।

उठो कॉसाई ।
उठो ।
क्षमता है तुम मे अब भी
पहाडो को तोडकर
चट्टाना को बहाने की
हरा-भरा कर देने की
उन शाखो को
जो तुम्हारे आलिगन की आकाक्षा मे
चिपकी पडी है
पेड़ा से अब भी ।

उठो कॉसाई ।
तोड दो किनारो का प्रतिबन्ध
चूम लो धरती के होठ
जिन पर पपडियाँ पड़ी है
तुम्हारे स्पर्श के अभाव म ।

अगर
तुम न जागी कॉसाई ।
तो प्यासा ही रह जाएगा सागर
सावन मे भी
वह तो तुम्हारे आगोश की आकाक्षा मे
किनारा तक
बार-बार लहरा कर आता है
अब भी ।

(कॉसाई मेदिनीपुर की एक नदी)

नही, थकी नही हो तुम ।

नही
थकी नही हो तुम ।

थकती है कभी हवा भी ।
वह तो कॉटो की चुभन के बावजूद
गझिन जगला के
अडे-खडे दरख्ता का अहम् कुचलती
बहती ही रहती है
बिखेरते-बिखेरते
सँजोयी बटोरी सुगन्ध ।

थकती है कभी नदी भी ।
वह तो चट्टानी अटकाव के बावजूद
बीहड राहा की
हर अवॉछित दखलदाज़ी ढाहती
बढती ही रहती है
लम्हा-लम्हा
सागर-सगम की ओर ।

चद बेबुनियादी दकियानूसी दलीला के
अडगा से
स्वर्णिम सूर्यादय का सकल्प
डिगता नही तनिक भी ।

थकती है कभी नाव भी
लहरो के जूझते वक्त ।
घनघोर स्याह अँधेरे का
कलेजा छलनी करने म
रोशनी को न झिझक होती है
न थकान ।

नही
थकी नही हो तुम ।

जितने भी रग मिले

जितने भी रग मिले
बटोर लाया
तुम्हारे लिए

एक ख्वाहिश
एक तमन्ना
एक स्वप्न -
तुम इन्द्रधनुष बनो ।

पहुँचो
नभ की ऊँचाई तक
पसरो
धरती के इस छोर से उस छोर तक
आगोश मे
प्रत्यचा,
पृथ्वी
या
मै । •

रुक जाती थी जो हवा

रुक जाती थी
जो हवा
पत्तो को थपथपाने की खातिर
देने को स्नेहस्पर्श की अनुभूति
बढ़ जाती है
बेटोक
सोचती तक नही
किस हादसे म
शाखाएँ हो गयी नगी ।

पतझड़ के पात
न जाने कितनी बार
छूते है पैर दरख्ता के
पर
तब सम्भव कहाँ
हो पाये उपलब्धि
पुनर्जीवन की ।

जब
समा जाती है असमर्थता
शब्दा म अभिव्यक्ति की
पड़ जाता है अकाल सम्बोधना का
खोजे नही मिलते
जाने-पहचाने चेहरे ।

कुछ बच्चे उडाते है पतग

कुछ बच्चे
उडाते है पतग
कुछ
हो लेते है उनके साथ
थामते है लटाई
सुलझाते है धागे ।

कुछ वच्चे निहारते है
पतग का उडना
उसका
लम्हा-लम्हा
आकाश म
ऊपर ही ऊपर वढना ।
वे सोचते है
किसी दिन वे भी
उड़ा पायगे पतग ।

कुछ बच्चे करते है
पतग के उडने का परिहास
करते है प्रयास
डोर को तोड कर लूट ले पतग ।

छीनाझपटी म
हो जाती है पतग
चिथड़ा - चिथडा ।

वे तनिक भी हिचकिचाते नही
पतग को रौदने से पैरा तले ।

अगर गुनाह है
आकाश छू लेने की तमन्ना
तो गुनहगार है पतग । *

सपने पत्तो से छन छन आँगन मे पसरते

सपने
पत्ता से छन छन
आँगन म पसरते
नर्म-नर्म धूप बन ।

सपने
बागो के फूल
तितली के लहँगे
भवरा के गुजन ।

सपने
आवारा बादल
आँखा के काजल पर
बूँद-बूँद बरसते ।
सुरमई उजारे म
लहरा की पायल से
टकराते
छितराई
नन्ही सी घासा पर
ओस की बूँद बन ।

सपने
बालुई किनारा पर
बलखाती लहरा के
पाँव के निशान ।

सपने
इँगुरी भोर म
मुर्गा की बॉग पर
साँकल की खनखन ।

सपने
जेठ की
दोपहरी
जाडे की धूप
पूनम का चाँद
अमावस की रात ।

सपने
चाँदी की कटोरी म
दूध और भात ।

आगमन वसंत का

आगमन वसत का
हरे भरे
हो गए
सारे वृक्ष
और
उनके इर्द-गिर्द
उड़ता रहा
एक पात
पतझड़ का ।

ट्रेन के डिब्बे मे भी

ट्रेन के डिब्बे म भी
लोग
खडी कर लेते है
दीवार ।

बद कर दिये जाते है
कूपे के दरवाज़े,
टान दिये जाते है
पर्द -
सिमटा दिया जाता है
तमाम 'कम्पार्टमेन्ट
मात्र
चार बर्थो पर ।

तब
तमाम रात
कडक्टर के पीछे
होती भागदौड से
कुछ भी वास्ता
नही रह जाता ।

तब
नही सुनाई देती है
पड़ोस के चूल्हे पर
खाली बर्तना की
उबलती छटपटाहट ।
फुटपाथ पर
भूख की चीख ।
आँखा से
टपकती लडिया की
आवाज ।

सिमटते जा रहे है
तमाम रास्ते ।

कब महसूस किया है

कब
महसूस किया है
ट्रेन ने
अपने गुज़र जाने के बाद
विधवा की माँग सा
पटरियों का सूनापन
प्लेटफ़ॉर्म के कोलाहल में
पदचापों का सन्नाटा ।

डोर के टूटते ही
पल पल बढ़ती है
पतंग की
दिशाहीनता
तब
जा अटकती है वह
दरख़्त की
किसी नंगी शाख से
समा जाती है
किसी सुनसान हवेली में
समेटती है
मुरझाई पंखुड़ियों का
बिखराव ।
या
फिर
करती है
पंखों के बाँझपन से
समझौता
जा चिपकती है
बालुई घरौंदों के अवशेषों से
और
करती है
लहरों के
लौट आने का
इन्तज़ार । *

पता नही यह सिलसिले की शुरुआत है या ख़ातमा

पता नही
यह
सिलसिले की
शुरुआत है
या
ख़ातमा ।

पिघलती बर्फ़ पर
चिटकते पत्थरा की गर्माहट का
बहते रहना

बहते रहना
सागर-तृप्ति की खातिर
सरिता का
समर्पण की ओर ।

रेत के किनारा पर
ख्वाबा के घरौदा की
पदछाप
पानी की लकीरा से
लिखी कहानियाँ
किसी भी
हड़प्पा या मोहनजोदडो से
कम नही ।

पुरातत्व - विशेषज्ञा की
अँगुलिया का स्पर्श
मात्र
जोड़ सकता है इन्हे
बाँध सकता है
एक - दूसरे को
रिश्ता की
परिभाषा म ।
पर
नही बखान सकता
सिलसिला समर्पण का
जो
हो जाता है शुरू
अचानक
और
तब
पता भी नही चलता कि
यह
सिलसिले की
शुरुआत है
या
खातमा । ❖